प्रथम अध्याय

निघण्टु तथा निरुक्त का परिचय

- निघण्टु :
- निघण्टु का स्वरूप,
- निघण्टु के टीकाकार,
- निघण्टु निर्वचनम् में उल्लिखित आचार्यों का परिचय ।
- निरुक्त :
- निरुक्त का स्वरूप-परिमाण-पाठ
- निरुक्त का प्रयोजन
- निरुक्त का उपकार ।

प्रथम अध्याय

निघण्टु तथा निरुक्त का परिचय

किसी भी देशकाल से सम्बन्धित कोई भी भाषा क्यों न रही हो, उसमें व्यवहृत समस्त शब्द समाम्नाय अनिवार्य रूप से अर्थयुक्त ही होता है, किन्तु कभी-कभी काल की गति के वशीभूत होकर बहुत से शब्दों का अर्थ या तो किन्हीं कारणों से परिवर्तित हो जाता है अथवा कई बार मूल शब्द ही प्रचलन से बाहर हो जाता है ।

वैदिक भाषा के साथ भी इसी प्रकार की समस्याएँ घटित हुईं और एक समय ऐसा आया जब वैदिक मन्त्रों की अर्थवत्ता पर सन्देह व्यक्त करते हुए कौत्स आदि मनीषियों द्वारा *"अनर्थका हि मन्त्राः"*।[१] कहते हुए नाना प्रकार के आक्षेप किए गए । वैदिक भाषा में कालप्रभाव के परिणाम स्वरूप शब्द और अर्थ के मध्य कुछ विसंगतियाँ उत्पन्न हो गईं । बहुत से शब्द प्राचीन अर्थों को छोड़कर किसी नवीन अर्थ में प्रचलित हो गए । वैदिक भाषा की अर्थवत्ता सिद्ध करने हेतु एक सुव्यवस्थित शब्दकोश की आवश्यकता अनुभव हुई फलस्वरूप निरुक्त विज्ञान (निर्वचनशास्त्र) की एक दीर्घ परम्परा का विकास हुआ, जिसके अन्तर्गत महर्षि यास्क का निरुक्त आज हमें प्राप्त होता है । निरुक्त में महर्षि यास्क द्वारा दिए गए सङ्केतों से हमें उनसे पूर्ववर्ती बारह नैरुक्तों आग्रायण, औपमन्यव, औदुम्बरायण, और्णवाभ, कात्थक्य, क्रौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकपूणि तथा स्थौलाष्ठीवि के नाम तथा उनके कतिपय सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त होता है, किन्तु उनमें से किसी आचार्य का कोई निरुक्त ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है ।

निघण्टु

निर्वचन विज्ञान की परम्परा में 'निघण्टु' और 'निरुक्त' ये दो नाम हमें प्राप्त होते हैं । निघण्टु के स्वरूप पर विचार करते हुए स्वयं महर्षि यास्क कहते हैं - *'समाम्नायः समाम्नातः। स व्याख्यातव्यः। तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते। निघण्टवः कस्मात्। निगमा इमे*

१- निरुक्त १.१५ ।

भवन्ति'[1] अर्थात् वैदिक वाङ्मय से चुन-चुन कर एकत्र किए गए पदों का सङ्कलन निघण्टु कहलाता है । मूल रूप से यह कोशग्रन्थ रचना का प्रथम सोपान है जिसके अन्तर्गत वैदिक वाङ्मय से उन शब्दों को सङ्कलित किया गया जो विभिन्न कारणों से भाषा में दुर्बोध अथवा अर्थहीन माने जाने लगे ।

कालक्रमानुसार निघण्टुग्रन्थों की सङ्ख्यात्मक बहुलता के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं, जिनके अनुसार सम्प्रति निरुक्त के समान ही निघण्टु भी सङ्ख्या में अनेक थे । सम्भवतः जिन आचार्यों ने निरुक्त की रचना की उन्होंने अपने-अपने निघण्टु (शब्द समाम्नाय) का भी सङ्कलन किया होगा, परन्तु आज हमें मात्र दो ही निघण्टु प्राप्त होते हैं । एक कौत्सव्यकृत दूसरा यास्ककृत निघण्टु । यद्यपि 'एकार्थवाची और पर्यायवाची पदों का सङ्ग्रह' निघण्टु की विशेषता मानते हुए पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी ने अमरकोश, वैजयन्ती, हलायुध कोष आदि को निघण्टु की श्रेणी में परिगणित करते हुए दस निघण्टुओं को स्वीकार किया है ।[2] यास्ककृत निघण्टु के कर्त्ता के विषय में भी पर्याप्त मतभेद हैं ।

कुछ विद्वानों के मतानुसार यह महर्षि यास्क का स्वकृत सङ्कलन है तो कुछ आचार्यों का मत है कि यह मात्र किसी एक व्यक्ति का नहीं अपितु कालक्रमानुसार अनेक व्यक्तियों के परिश्रम का परिणाम है ।

दुर्गाचार्य का मत है कि निघण्टु नामक कोशग्रन्थ महर्षि यास्क का नहीं अपितु महर्षि यास्क से पूर्ववर्ती विद्वानों के सम्मिलित प्रयासों का फल है । अपने इस मत की प्रामाणिकता के लिए वे 'दावने, अकूपारस्य' इन दो शब्दों को प्रस्तुत करते हैं । उनका कथन है कि निघण्टु में इन दोनों शब्दों का क्रम 'दावने, अकूपारस्य' है जबकि निर्वचन के क्रम में महर्षि यास्क जो मन्त्र प्रस्तुत करते हैं उनमें इनका क्रम 'अकूपारस्य, दावने' है । दुर्गाचार्य का आक्षेप है कि यदि

१- निरुक्त १.१ ।

२- एकार्थवाचिनां पर्यायशब्दानां सङ्घो यत्र प्रायेण उपदि..... तत्र निघण्टुशब्दः प्रसिद्धः; तादृशोष्वमरसिंहवैजयन्तीहलायुध..... दश निघण्टव इति व्यवहारात् । (निरुक्तम्, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी) ।

निघण्टु और निरुक्त दोनों ही महर्षि यास्क कृत होते तो दोनों ही स्थानों पर शब्दों का क्रम एक ही होता न कि आगे पीछे ।

इसी प्रकार महाभारत के मोक्षपर्व में वर्णित एक श्लोक[१] के आधार पर पं० सत्यव्रत सामश्रमी इसे महाभारत से भी पूर्ववर्ती किसी कश्यप प्रजापति की रचना स्वीकार करते हैं । आधुनिक विद्वानों में श्रीयुत् कर्माकर और श्री लक्ष्मण सरूप के मत में भी निघण्टु को महर्षि यास्क की कृति नहीं माना जा सकता है । डॉ० सरूप का तो यहाँ तक कहना है कि निघण्टु का सङ्कलन यास्क की वंश परम्परा से किया हुआ संयुक्त प्रयास है ।

बहुत से विद्वान् इस बात के प्रबल समर्थक भी हैं कि निघण्टु नामक यह सङ्कलन महर्षि यास्क की ही कृति है । इसी क्रम में मधुसूदन सरस्वती का मन्तव्य उल्लेखनीय है । उन्होंने अपने 'प्रस्थानभेद' नामक ग्रन्थ में पञ्चाध्यायात्मक निघण्टु को महर्षि यास्क की ही कृति के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु इस विषय में उनके द्वारा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया । परन्तु भाष्यकार वेङ्कटमाधव अपने 'ऋगर्थदीपिका' में निघण्टु को यास्ककृत ही स्वीकार करते हैं ।[२]– 'महर्षि दयानन्द सरस्वती भी निघण्टु को महर्षि यास्क की ही कृति मानते हैं । उनका कथन है – *'अयं (निघण्टुः) मूलग्रन्थोऽस्य भाष्यं च निरुक्तमिति द्वौ अपि ग्रन्थौ यास्को मुनिः प्रणिनाय ।'*[३] वैदिक विद्वानों में अन्यतम सायणाचार्य भी निघण्टु को यास्क प्रणीत मानने के प्रबल पक्षधर हैं ।

टीकाकार देवराज यज्वा द्वारा उल्लिखित 'निघण्टु निर्वचनम्' नामक ग्रन्थ की भूमिका में भी स्पष्ट रूप से *'भगवता यास्केन समाम्नायं नैघण्टुककाण्डनैगमदैवतकाण्डरूपेण त्रिविधं गवादिदेवपत्न्यन्तं निर्ब्रुवता...।'* यह कथन दृष्टव्य है । इससे ज्ञात ही है कि आचार्य देवराज यज्वा के मतानुसार भी पञ्चाध्यायात्मक निघण्टु महर्षि यास्क द्वारा ही सङ्कलित है ।

'निघण्टु' बहुत प्राचीन कोशग्रन्थ है । सम्भवतः उस समय तक कोश-कला इतनी परि-

---

१- वृषो हि भगवान् धर्म्मः ख्यातो लोकेषु भारत । निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम् ।। कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते। तस्मात् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः ।।

२-तत्रैकविंशतिर्नामानि काचिद्यौर्बिभर्तीति पृथिवीमाह । तस्य हि यास्कपठितान्येकविंशतिर्नामानि । (ऋगर्थदीपिका)

३ - निघण्टु की भूमिका में ।

ष्कृत न रही हो जितनी आज है । अतः थोड़ी सी भिन्नताओं के आधार पर इसे किसी अन्य विद्वान् की कृति कह देना उचित नहीं है ।

निघण्टु का स्वरूप महर्षि यास्क द्वारा सङ्कलित निघण्टु तीन काण्डों में गुम्फित है । इसके प्रथम काण्ड का नाम 'नैघण्टुक काण्ड' है तथा यह तीन अध्यायों में विभक्त है । इसके प्रथम अध्याय के सत्रह खण्डों में पृथ्वी (२१), हिरण्य (१५), अन्तरिक्ष (१६), साधारण (६), रश्मि (१५), दिक् (८), रात्रि (२३), उषा (१६), अहः (१२), मेघ (३०), वाक् (५७), उदक (१००), नदी (३७), अश्व (२६), आदिष्टोपयोजन (१०), ज्वलतिकर्म (११) भौतिक व प्राकृतिक पदार्थों के वाचक कुल ४१५ पदों का सङ्कलन है । द्वितीय अध्याय के बाईस खण्डों में कर्म (२६), अपत्य (१५), मनुष्य (२५), बाहु (१२), अङ्गुलि (२२), कान्तिकर्म (१८), अन्न (२८), अत्तिकर्म (१०), बल (२८), धन (२७), गो (९), क्रुध्यतिकर्म (१०), क्रोध (११), गति (२२२), क्षिप्र (२६), अन्तिक (११), सङ्ग्राम (४६), व्याप्तिकर्म (१०), वधकर्म (३३), वज्र (१८), ऐश्वर्यकर्म (४), ईश्वर (४) कुल ५१६ अनेकार्थक पदों का सङ्कलन है । नैघण्टुक काण्ड के तृतीय अध्याय के कुल ३० खण्डों में विभिन्न भावाभिव्यञ्जक पदों, जैसे बहु, ह्रस्व, सुख, प्रज्ञा आदि, और उनके समानार्थक शब्दों को मिलाकर ४१० पदों का सङ्कलन है । इस प्रकार नैघण्टुक काण्ड में कुल १३४१ पदों का सङ्कलन किया गया है ।

नैगम नामक द्वितीय काण्ड मात्र ३ खण्डों में सङ्कलित है तथा इसमें कुल २७९ पदों का सङ्कलन है । इस काण्ड में सङ्कलित पदों को व्युत्पत्ति एवं निर्वचन की दृष्टि से क्लिष्ट माना जाता है ।

दैवत नामक तृतीय काण्ड के छः खण्डों में १५१ पदों का सङ्कलन है तथा जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें देवताओं के नाम व उनके गुणवाचक शब्दों का सङ्कलन किया गया है ।

इस प्रकार सम्पूर्ण निघण्टु में कुल १७७१ पदों का सङ्कलन है ।

<u>निघण्टु के टीकाकार</u> महर्षि यास्क द्वारा स्थान-स्थान पर प्रस्तुत सङ्केतों से यह ज्ञात होता है कि महर्षि यास्क से पूर्व भी निघण्टु व निरुक्त रचना की एक समृद्ध परम्परा रही है । महर्षि यास्क ने अपने पूर्ववर्ती अनेक सम्प्रदायों जैसे वैयाकरण, नैरुक्त, निघण्टुकार तथा उनसे सम्बन्धित बहुत से आचार्यों का 'एके', 'अपरे', 'आचार्याः', 'अन्ये' इत्यादि शब्दों के द्वारा उल्लेख किया है । इसके साथ ही औदुम्बरायण, औपमन्यव, वार्ष्यायणि, गार्ग्य, आग्रायण, शाकपूणि, और्णवाभ, तैटीकि, गालव, स्थौलाष्ठीवि, क्रौष्टुकि, कात्थक्य, कौत्स आदि आचार्यों का नामोल्लेख सहित उनके सिद्धान्तों का प्रस्तुतीकरण महर्षि यास्क द्वारा निरुक्तशास्त्र में यथास्थान द्रष्टव्य है ।

महर्षि यास्क के परवर्ती निघण्टुव्याख्याकारों में एकमात्र देवराज यज्वा का नाम लिया जा सकता है । क्योंकि यज्वा से पूर्ववर्ती तथा महर्षि यास्क के अनन्तर अन्य जितने स्कन्द, महेश्वर, दुर्गाचार्य आदि आचार्य हुए हैं वे सभी महर्षि यास्ककृत निरुक्त के भाष्यकार रहे हैं न कि निघण्टु के, यद्यपि भाष्य करते समय उन्होंने कुछ अन्य निघण्टु पदों का निर्वचन प्रस्तुत करके अपनी निर्वचन निष्ठा तथा विद्वता का परिचय देने का प्रयास किया है। परन्तु निघण्टु के लगभग समस्त पदों की सुव्यवस्थित और सुनियोजित क्रम से व्युत्पत्ति तथा निर्वचन देने का जो प्रयास आचार्य देवराज यज्वा द्वारा किया गया है वह उन्हें महर्षि यास्क के अनन्तर निघण्टु टीकाकार के रूप में प्रमुखता से स्थापित करता है ।

आचार्य देवराज यज्वा ने नैघण्टुक काण्ड के लगभग सभी पदों के साथ नैगम और दैवत काण्ड के पदों को भी अपने व्याख्यान का विषय बनाया है , तथापि उन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम 'निघण्टु निर्वचनम्' रखा है । इस विषय में पं० सामश्रमी जी का मत है कि यास्कीय निरुक्त में जितना स्पष्ट और सुन्दर निर्वचन नैगम और दैवत काण्ड के पदों का किया गया है उतना नैघण्टुक काण्ड के पदों का नहीं [१], अतः कदाचित् आचार्य यज्वा का उद्देश्य नैघण्टुक काण्ड के

१- किञ्च निरुक्तमिति प्रसिद्ध यास्कीये... । (निरुक्तालोचनम्, पृ० २७०)

पदों को पूर्णरूप से स्पष्ट करना रहा होगा । अतएव आचार्य यज्वा द्वारा ग्रन्थ का नामकरण 'निघण्टु निर्वचनम्' समीचीन ही प्रतीत होता है ।

आचार्य देवराज यज्वा द्वारा प्रणीत 'निघण्टु निर्वचनम्' का महत्त्व मात्र इस कारण ही नहीं है कि उसमें प्रायः समस्त निघण्टु पदों की व्याख्या कर दी गई है अपितु इसका महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता कि आचार्य यज्वा ने इस ग्रन्थ की भूमिका में उस काल में प्राप्त पाण्डुलिपियों का सामान्य परिचय तथा स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न पाठ भेदों को भी स्पष्ट किया है ।[१] इससे उस समय निघण्टु का स्वरूप क्या था ? यह जानने में भी सहायता प्राप्त होती है । आचार्य यज्वा का कथन है कि –*"तेषु च केषुचिदर्थेषु लेखकप्रमादादिभिः कानिचित्पदान्यधिकान्यासन्। अन्येषु च कानिचिन्न्यूनानि। अपरेषु च कानिचिदपहाय कानिचित् विश्रस्तानि। अक्षराणि च विपर्यस्तानि। एवं व्याकीर्णेषु कोशेषु नियमैकभूतस्य प्रतिपदनिर्वचननिगमप्रदर्शनपरस्य कस्यचिद् व्याख्यानस्याभावात् नैघण्टुक काण्डमुत्सन्नप्रायमासीत्।"*[२]

इसके अतिरिक्त आचार्य देवराज यज्वा अत्यन्त विनम्रता व उदारता के साथ अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति आदर और कृतज्ञता का प्रदर्शन करते हैं – *"इदञ्च स्वमनीषिकया न क्रियते किन्तु निघण्ट्वागतेष्वेव पदेष्वध्यर्द्धशतत्रयमात्राणि पदानि भाष्यकारेण एव तत्र तत्र निगमेषु प्रसङ्गान्निरुक्तानि, स्कन्दस्वामिना च निगमव्याख्यानेषु अन्यानि च पदानि शतद्वयमात्रा-ण्युपात्तानि। तेन च समाम्नायपठितानां पदानामन्येभ्यो व्यावृत्त्यर्थं किञ्चिच्चिह्नं कृतम्, असक्तेषां पाठशुद्धिस्तत्रैव शुद्धा। अन्येषाञ्च पदानामस्मत्कुले समाम्नायाध्ययमस्याविच्छेदात्, श्री वेङ्कटाचार्यतनयस्य माधवस्य भाष्यकृतौ नामानुक्रमण्याः ....।"* [३]

<u>'निघण्टुनिर्वचनम्' में उल्लिखित आचार्यों का परिचय</u> आचार्य देवराज यज्वा ने अनेक विद्वानों का नामोल्लेख किया है । उनका कथन है -*" अन्येषाञ्च पदानामस्मत्कुले*

१- पाठभेदों के लिए कृपया परिशिष्ट देखें ।

२,३- 'निघण्टु निर्वचनम्' की भूमिका में ।

समाम्नायाध्ययनस्याविच्छेदात्, श्रीवेङ्कटाचार्यतनयस्य माधवस्य भाष्यकृतौ नामानुक्रमण्याः, आख्यातानुक्रमण्याः स्वरानुक्रमण्याः, निपातानुक्रमण्याः, निर्बन्धनानुक्रमण्याः तदीयस्य भाष्यस्य च बहुशः पर्यालोचनात्, बहुदेशसमानीतात् बहुकोशनिरीक्षणाच्च पाठः संशोधितः। निर्वचनञ्च – (१) निरुक्तम् (२) स्कन्दस्वामिकृतां निरुक्तटीकाम्, (३) स्कन्दस्वामिभवस्वामि-राहदेव[१] श्रीनिवासमाधवदेवउवटभट्टभास्करमिश्रभरतस्वाम्यादिविरचितानि वेदभाष्याणि (४) पाणिनीयं व्याकरणम् , (५) विशेषतः उणादितद्वृत्तिम्, क्षीरस्वाम्यनन्ताचार्यादिकृतां निघण्टुव्याख्यायाम् .... अनुसृत्य निरुक्तिः क्रियते ।"[२]

आचार्य यज्वा द्वारा जिन विद्वानों के नाम प्रस्तुत किये गए हैं, उनमें से यथासम्भव कुछ विद्वानों का परिचय आगे प्रस्तुत है –

(१) स्कन्दस्वामी वेदभाष्यकारों की श्रृङ्खला में आचार्य स्कन्दस्वामी का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है । महर्षि यास्क कृत निरुक्त का भी भाष्य इनके द्वारा किया गया है । आचार्य देवराज यज्वा ने इनका नाम स्मरण बड़े ही आदर से करते हुए इन्हें नैघण्टुक काण्ड के यास्क-निर्वचित पदों से इतर अन्य दो सौ पदों का निर्वचनकर्त्ता स्वीकार किया है ।सम्भवतः आचार्य यज्वा के समय तक इनका भाष्य पर्याप्त प्रसिद्धि का अर्जन कर चुका था । संस्कृत वाङ्मय के अन्य विद्वानों की भाँति इनके भी देशकाल के विषय में विद्वत्समाज में पर्याप्त मतभेद है । इनकी स्थिति का समय निर्धारित करते हुये सप्रमाण पं० सत्यव्रत सामश्रमी कहते हैं –*"६२७ शाकीयताम्रशासनतोऽपि गम्यते, भवेतच्छताब्दीज एवायनिति । तदिदं ताम्रफलकवृत्तान्तं Bombay Branch R.A.S. प्रकाशिते पत्रे (III २०८ – १८५१) विशेषतो द्रष्टव्यम् ।"[३]*

ऋग्वेद के अपने भाष्य की पुष्पिका में इन्होंने अपना परिचय दिया है । तदनुसार ये गुजरात की राजधानी वलभी के निवासी थे । इनके पिता का नाम भर्तृध्रुव था । शतपथ ब्राह्मण

१- मुद्रित रूप में राहदेव है परन्तु सामश्रमी जी ने गुहदेव लिखा है ।

२- 'निघण्टु निर्वचनम्' की भूमिका में ।

३- निरुक्तालोचनम् पृ० २७१ ।

के भाष्यकार हरिस्वामी ने इन्हें अपना गुरु बतलाया है ।[१] हरिस्वामी जी द्वारा प्रदत्त सङ्केतों के अनुसार इनका समय ६३८ ई० के आसपास माना जा सकता है ।

वेदभाष्यकार स्कन्दस्वामी और निरुक्त भाष्यकार स्कन्दस्वामी एक हैं या दो भिन्न व्यक्तियों के नाम हैं, इस विषय में आचार्य देवराज यज्वा का कथन है कि स्कन्द स्वामी ने निरुक्त टीका में 'प्रयस्' तथा वेदभाष्य में 'श्रवस्' इन दोनों पदों का अर्थ 'अन्न' किया है ।[२] इससे वेदभाष्यकार तथा निरुक्त भाष्यकार दोनों की अभिन्नता सिद्ध होती है । आचार्य देवराज यज्वा के अनुसार स्कन्दस्वामी ने महर्षि यास्क द्वारा छोड़ दिए गए नैघण्टुक काण्ड के पदों में से लगभग दो सौ पदों की व्याख्या की है ।[३] इसके अतिरिक्त निरुक्त को समझने में इनके भाष्य की उपयोगिता और महत्त्व को दृष्टिगत रखकर ही यज्वा ने स्थान-स्थान पर इनके मत को उद्धृत किया है ।

<u>(२) भवस्वामी</u> भवस्वामी का नामोल्लेख भूमिका में किए जाने से यह तो स्पष्ट ही है कि आचार्य देवराज यज्वा ने इनकी व्याख्या का अध्ययन अवश्य किया होगा और उससे आवश्यक सहायता भी ग्रहण की होगी परन्तु 'निघण्टु निर्वचनम्' में कहीं भी आचार्य यज्वा द्वारा भवस्वामी का कोई उद्धरण प्रस्तुत नहीं किया गया है । अतः पं० सामश्रमी जी ने यह शङ्का व्यक्त की है कि सम्भवतः भवस्वामी का ग्रन्थ विरलजनों के मध्य ही प्रचलित था । इस प्रकार इस भाष्य के लाभ की क्या कथा है? इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाता ।[४] उनके द्वारा किया गया अग्निष्टोम प्रयोग आज भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है । यज्वा के अतिरिक्त भट्टभास्कर द्वारा भी

१- यः सम्राट् कृतवान्सप्त सोमसंस्थास्तथर्क्श्रुतिम् । व्याख्यां कृत्वाऽध्यापयन्मां स्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरुः । (शतपथ ब्राह्मण) ।

२- 'उप प्रयोभिरागतम्' (ऋ० १.२.४) इत्यादिषु निरुक्तटीकायां स्कन्दस्वामिना पयं इत्यन्ननामेत्युच्यते । तथा च 'अक्षिति श्रवः' (ऋ० १.४०.४) इत्यादिनिगमेषु वेदभाष्ये 'श्रव इत्यन्ननाम' इति स्पष्टमुच्यते ।(निघण्टु निर्वचनम् २.७.४) ।

३- स्कन्दस्वामिना च निगमव्याख्यानेषु अन्यानि च पदानि शतद्वयमात्राण्युपात्तानि । ('निघण्टु निर्वचनम्' की भूमिका, पृ० २ ।)

४- ततः तदानीमेव तद्भाष्यं विरलप्रचारतामुपगतमिति प्रतीयते; इदानीन्तु तद्भाष्यलाभस्य का कथा। (निरुक्तालोचनम् पृ० २७१)।

आपस्तम्बसंहिता में भवस्वामी का नामोल्लेख किया गया है ।

(३) गुहदेव (राहदेव) आचार्य देवराज यज्वा की टीका में राहदेव प्राप्त होता है परन्तु सम्भवतः यह भ्रमवश पढ़ लिया गया प्रतीत होता है । पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी ने इसे गुहदेव ही स्वीकार किया है । आचार्य यज्वा ने अपनी निघण्टु टीका की भूमिका में तो इनका नाम सादर स्मरण किया ही है, यथास्थान ग्रन्थ में इनके द्वारा प्रस्तुत निर्वचनों को भी उद्धृत किया है । आचार्य गुहदेव के परिचय के सन्दर्भ में पं० सामश्रमी जी का मत है कि ये रामानुज स्वामी से भी प्राचीन हैं तथा वेदान्ताचार्य सम्प्रदाय के गुरुओं में तृतीय गुरु हैं ।[१] जबकि स्वयं रामानुज स्वामी द्वारा प्रस्तुत क्रम के अनुसार आचार्य गुहदेव वेदान्ताचार्य सम्प्रदाय के गुरुओं में तृतीय नहीं अपितु चतुर्थ गुरु थे ।[२]

(४) उव्वटभट्ट आचार्य उव्वटभट्ट वाजसनेयि संहिता के प्रथम भाष्यकार थे । कहीं-कहीं इनका नाम उवटभट्ट लिखा हुआ भी मिलता है । इनके पिता का नाम वज्रट था । इन्होंने अवन्ति सम्राट् भोज का उल्लेख किया है; जिससे इनका समय ११ वीं शताब्दी के मध्य माना जा सकता है । इनका नाम टकारान्त होने से ये भी सम्भावना व्यक्त की जाती है कि कदाचित् इनका निवास कश्मीर प्रदेश रहा होगा । ऋक्प्रातिशाख्य, यजुर्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी तथा कात्यायन प्रातिशाख्य पर भी इनके भाष्य प्राप्त होते हैं ।

(५) श्रीनिवास आचार्य श्रीनिवास के विषय में लोकोक्ति प्रचलित थी कि ये श्रीमत् भगवत् शङ्कराचार्य के गुरु थे । अतः तदनुसार इनकी स्थिति सं० ८५० के आसपास मानी जा सकती है। 'निघण्टु निर्वचनम्' में छः स्थानों पर इनके मत को उद्धृत किया गया है । इससे प्रतीत होता है

१- अयं हि रामानुजस्वामिनोऽप्यतीवपूर्वतनः किमधिकेन वेदान्ताचार्यसम्प्रदायगुरुषु तृतीयः.... ।(निरुक्तालोचनम् पृ० २७१) ।

२-भगवद्बोधायनटङ्कद्रमिडगुहदेवकपर्दिभारुचिप्रभृत्यविगीतशिष्टपरिगृहीतपुरातनवेदवेदान्तव्याख्यानसुव्यक्तार्थश्रुतिनिकर-निदर्शितोऽयं पन्थाः । (वेदार्थसङ्ग्रहः, पृ०२४ (श्रीभगवद्रामानुजग्रन्थमाला, १९५६ सम्पादक श्री काञ्ची पी०बी० अण्णङ्गराचार्यस्वामी, ग्रन्थमाला ऑफ़िस, काञ्चीपुरम्)।

कि आचार्य यज्वा के समय तक इनका भाष्य प्राप्य था किन्तु आज यह उपलब्ध नहीं है ।

(६) माधवदेव पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी के कथनानुसार आचार्य यज्वा द्वारा वर्णित माधव आचार्य सायण के भाई माधव से भिन्न कोई अन्य व्यक्ति थे क्योंकि आचार्य सायण के अग्रज आचार्य माधव के वेदभाष्य में एक भी उद्धरण ऐसा प्राप्त नहीं होता जिसे आचार्य देवराज यज्वा ने आचार्य माधव के नाम से उद्धृत किया हो । आचार्य यज्वा के द्वारा उल्लिखित माधव के पिता का नाम श्री वेङ्कटाचार्य था, जैसा कि भूमिका में स्वयं देवराज यज्वा द्वारा कहा गया है- 'श्रीवेङ्कटाचार्यतनयस्य माधवस्य भाष्यकृतौ....'। अब इसमें जिस श्री वेङ्कटाचार्य का उल्लेख किया गया है वह श्री वेङ्कटाचार्य कौन थे ? इसकी जिज्ञासा स्वाभाविक है क्योंकि वेङ्कटाचार्य नाम से प्रसिद्ध दो व्यक्तियों का परिचय प्राप्त होता है । प्रथम तो 'शुल्बमीमांसाकार' थे तथा द्वितीय 'रहस्यत्रयसागर' तथा 'न्यासतिलक' के प्रणेता आचार्य थे । किन्तु देवराज द्वारा उल्लिखित माधव इनमें से किसके पुत्र थे इसके विषय में अधिक कुछ भी कहना सम्भव नहीं है ।

(७) भास्कर मिश्र (भट्ट) पं० सामश्रमी जी के अनुसार भास्कर नाम के अनेक आचार्य तथा विद्वान् हुए हैं किन्तु आचार्य यज्वा द्वारा उल्लिखित भास्कर मिश्र इनमें से कौन हैं इस विषय में उन्होंने कोई स्पष्ट सङ्केत नहीं दिया है । अतः कुमारिल स्वामी को ही भास्कर मिश्र मानते हुए उन्होंने इनको श्रीमत् शङ्कराचार्य का समकालीन माना है । [१] यद्यपि आचार्य यज्वा ने इनके द्वारा प्रदत्त अनेक उद्धरणों को अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है ।

(८) भरतस्वामी आचार्य देवराज यज्वा ने आचार्य भरतस्वामी का मात्र एक ही निर्वचन उद्धृत किया है ।[२] इससे प्रतीत होता है कि आचार्य यज्वा के समय में ही कदाचित् इनका सम्पूर्ण भाष्य उपलब्ध नहीं था ।

१- निरुक्तालोचनम् पृ० २७६।

२- 'व्यचेर्व्याप्तिकर्मणः बेकुरा' इति भरतस्वामिभाष्यम् । (निघण्टु निर्वचनम् १.११.५७) ।

निरुक्त

सायणाचार्य का मत है – *'अर्थावबोधे पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्'* अर्थात् अर्थबोध के निमित्त जहाँ पदों को कहा गया है अर्थात् सङ्कलित किया गया है उसे निरुक्त कहा जाता है । अतः सायण द्वारा प्रदत्त इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष के दर्शनस्वरूप यह लक्षण निघण्टु पर भी घटित हो जाता है । अतः इसे पूर्णरूपेण उचित नहीं कहा जा सकता ।

इसके अतिरिक्त आचार्य सायण ने एक अन्य लक्षण भी बताया है । उनके मतानुसार *'एकैकस्य पदस्य सम्भाविता अवयवार्था यत्र निःशेषेणोच्यन्ते तन्निरुक्तम्'* अर्थात् एक-एक पद के सम्भावित अवयवार्थ जहाँ स्पष्टतया व्यक्त किए गए हों उसे निरुक्त कहते हैं । पं० सामश्रमी जी के मतानुसार आचार्य देवराज यज्वा ने आचार्य सायण द्वारा प्रस्तुत द्वितीय लक्षण को आधार बनाकर के ही अपने भाष्य की रचना की है ।[१]

क्लिष्ट पदों के अर्थ बोधन के लिए निर्वचन की यह परम्परा भारतवर्ष में बहुत प्राचीनकाल से ही प्रचलित है । निर्वचन विद्या के मूलबीज ब्राह्मण ग्रन्थों में भी दिखाई पड़ते हैं । वहाँ वैदिक ऋषियों द्वारा मन्त्रार्थ बोध के लिए पदों के निर्वचन करने की परम्परा के दर्शन होते हैं ।[२] महर्षि यास्क ने भी निरुक्त नामक अपने निर्वचन शास्त्र में ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्वचनों को भी यथास्थान उद्धृत किया है । महर्षि यास्क द्वारा प्रतिपादित निर्वचन शास्त्र के सिद्धान्त आधुनिक भाषाविज्ञान में अर्थनिर्धारण का मूलाधार हैं तथा आज भी अर्थ विज्ञान के अन्तर्गत किसी ऐसे नवीन सिद्धान्त की उद्भावना नहीं की जा सकी है जिसके विषय में महर्षि यास्क ने न कहा हो ।

महर्षि यास्क द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की महत्ता व उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए डॉ० लक्ष्मण सरूप ने निरुक्त को प्राचीन भारतीय ग्रन्थ मानते हुए कहा है –*'The oldest Indian treatise on Etymology, Philology and Samantics.'* [३]वैदिक मन्त्रों के अर्थ बोध में निरुक्त

१- निरुक्तालोचनम् पृ० २६२।

२- निर्वचन विज्ञान और पौराणिक निर्वचन (शिवसागर त्रिपाठी) ।

३- The Nighantu and Nirukta.

शास्त्र के महत्त्व को देखकर ही पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थ में इसे षड्वेदाङ्गों में श्रोत्र के रूप में वर्णित किया गया है । उनका कथन है

–' छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।

ज्योतिषाम् एनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते ।। [१]

निरुक्त का स्वरूप-परिमाण-पाठ

पञ्चाध्यायात्मक निघण्टु को आधार बनाकर महर्षि यास्क द्वारा जिस निरुक्त शास्त्र की रचना की गई, उसके अध्यायों की सङ्ख्या के विषय में भी विद्वानों में परस्पर मतभेद परिलक्षित होते हैं । प्राप्त निरुक्त में कुल चौदह अध्याय हैं जिनमें प्रथम अध्याय से द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद पर्यन्त निघण्टु का लक्षण, पद विभाग तथा नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातों का लक्षण और उदाहरण, निरुक्तशास्त्र के अध्ययन का उद्देश्य, निर्वचन शास्त्र के सिद्धान्त, वर्ज्य एवं ग्राह्य शिष्य का निरूपण आदि विषयों की चर्चा की गई है । द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद से तृतीय अध्याय पर्यन्त नैघण्टुक काण्ड के कुछ पदों का निर्वचन, चतुर्थ से षष्ठ अध्याय पर्यन्त नैगम काण्ड तथा सप्तम से द्वादश अध्याय पर्यन्त दैवत काण्ड के सभी पदों का निर्वचन प्रस्तुत किया गया है ।

इनमें भी नैघण्टुक काण्ड के अन्तर्गत एक ही अर्थ के लिए भिन्न-भिन्न पर्याय शब्दों का सङ्कलन किया गया है, तो नैगम काण्ड के अन्तर्गत अनेक अर्थ के लिए एक पद का सङ्कलन है । इसी विशिष्टता के कारण नैगम काण्ड ऐकपदिक काण्ड भी कहलाता है । इनमें अव्युत्पन्न अर्थात् जिन में प्रकृति-प्रत्यय का ज्ञान न हो सके ऐसे पदों का सङ्कलन है । दैवत काण्ड में प्रमुखतया स्तुति की गई है । देवताओं के नाम, कार्य,स्थान तथा सङ्ख्या का निरूपण तथा ऋचाओं के प्रकार को स्पष्ट करना इस दैवत काण्ड का मुख्य प्रयोजन है ।

१- - पाणिनीय शिक्षा ४१-४२ ।

निरुक्त के तेरहवें अध्याय में अतिस्तुतियों का प्रकरण है तो चौदहवें अध्याय में मन्त्रों के आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक अर्थ की सविस्तार चर्चा की गई है ।

वस्तुतः द्वादश अध्याय के अन्त में निघण्टु में सङ्कलित लगभग समस्त पदों की व्याख्या हो चुकी है अतः कुछ विद्वानों के मत में महर्षि यास्क प्रणीत निरुक्त द्वादश अध्याय पर्यन्त ही है ।ऐसे विद्वानों का मत है कि त्रयोदश और चतुर्दश अध्याय परिशिष्ट के रूप में बाद के किसी अन्य आचार्य के द्वारा जोड़े गए हैं । डॉ० लक्ष्मण सरूप जी इस मत के प्रबल समर्थकों में से एक हैं ।

कुछ विद्वानों के मतानुसार निरुक्त त्रयोदश अध्याय पर्यन्त है तथा चतुर्दश अध्याय महर्षि यास्क कृत नहीं है, क्योंकि इन आचार्यों का मत है कि आचार्य स्कन्द महेश्वर तथा दुर्गाचार्य द्वारा निरुक्त के त्रयोदश अध्याय पर तो टीका लिखी गई है परन्तु चतुर्दश अध्याय पर नहीं । जबकि पं० भगवद्दत्त जी ने 'निरुक्त' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करते हुए उसकी भूमिका में पृष्ठ सङ्ख्या २९ से ३१ तक विभिन्न प्रमाण प्रस्तुत करते हुए समस्त परिशिष्ट को यास्ककृत सिद्ध किया है । उनकी युक्तियाँ इस प्रकार हैं –

१- आचार्य सायण का ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात के अन्त में कथन है –

(क)- "…. तस्य ग्रन्थस्य निरुक्तत्वम् । तद् व्याख्यानं च समाम्नायः समाम्नातः, इत्यारभ्य … तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति – अनुभवति, इत्यन्तैर्द्वादशभिरध्यायैर्यास्को निर्ममे ।" अर्थात् बारह अध्यायों में यास्क ने निरुक्त रचा । बारहवें अध्याय का अन्त 'अनुभवति' पर होता है । प्राप्त निरुक्त में यह १२/१३ है ।

(ख) - ताण्ड्य ब्राह्मण ४.८.३ के भाष्य में सायण का कथन है – "तथा च यास्कः । शुक्रातिरेके पुमान् भवति । शोणितातिरेके स्त्री भवति । द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति ।" तात्पर्य यह है कि निरुक्त १४.६ का पाठ भी सायण को यास्कीय ही अभिमत है ।

२- उव्वट (सम्वत् ११०० के लगभग) यजुर्वेद भाष्य के १८.७७ में "न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति …।" यह निरुक्त १३.१२ का पाठ उद्धृत करते हैं ।

३- निरुक्त के प्रथम भाष्यकार स्कन्द महेश्वर (सम्वत् ६५० के निकट) निरुक्त ३.२० की टीका में निरुक्त १३.१३ को उद्धृत करते है । अतः निरुक्त के त्रयोदश अध्याय की मान्यता उन्हें भी स्वीकार है, ऐसा स्पष्ट होता है ।

इसके अतिरिक्त उद्गीथ, शाङ्खायन, दुर्गाचार्य, कुमारिल भट्ट, वररुचि, शौनक आदि विद्वानों ने भी यथास्थान निरुक्त के त्रयोदश अध्यायान्तर्गत उद्धरणों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है ।

कुछ स्थानों पर निरुक्त के त्रयोदश और चतुर्दश दोनों अध्यायों को एक ही माना है तथा उनकी मान्यता परिशिष्ट के रूप में की गई है। अतः उपर्युक्त नाना प्रमाणों के आधार पर असन्दिग्ध रूप से यही कहना समीचीन है कि निरुक्त के अन्तिम दो अध्याय (त्रयोदश, चतुर्दश) महर्षि यास्क कृत ही हैं ।

निरुक्त का प्रयोजन

निरुक्त जैसे शास्त्र की उपयोगिता क्या है कि महर्षि यास्क और उनसे पूर्ववर्ती अनेक विद्वानों ने अपने अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को इस रचना में समर्पित कर दिया । यह प्रश्न कदाचित् महर्षि यास्क के मन में भी उपजा होगा, अतः उनके द्वारा स्वयं निरुक्त १.१५ से १.२० तक निरुक्त शास्त्र की उपयोगिता के विषय में व्यापक व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है ।

महर्षि यास्क के प्रकृत निरुक्त से पूर्व के निरुक्त ग्रन्थों की रूपरेखा क्या थी इस विषय में वर्तमान युग में कुछ भी ज्ञात नहीं है । हाँ स्थान-स्थान पर महर्षि यास्क के द्वारा प्रस्तुत किए गए उद्धरणों से उनके विषय में आंशिक अनुमान अवश्य किया जा सकता है । किन्तु इस सम्भावना को भी पूर्णरूप से निराधार नहीं माना जा सकता कि जिस प्रकार व्याकरणाम्बुधि बृहस्पति से चलकर पाणिनि तक पहुँचते-पहुँचते व्याकरण गोष्पद मात्र रह गया, उसी प्रकार की स्थिति निरुक्त के साथ भी हुई हो और सम्भवतः महर्षि यास्क से पूर्व इसका ज्ञान भण्डार और विशाल रहा हो ।

अस्तु महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त की उपयोगिता के सन्दर्भ में जो तथ्य रखे थे, आज

इतने समय के उपरान्त भी वे यथार्थ ही हैं ।

महर्षि यास्क निरुक्तशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का सर्वप्रथम प्रयोजन बताते हुए निरुक्त को मन्त्र ज्ञान अथवा अर्थज्ञान के लिए उपयोगी और सहायक कहते हैं ।[१] मात्र इतना ही नहीं अपितु वे इसे व्याकरण का भी पूरक तथा स्वयं के भी स्वतन्त्र अर्थ का साधक मानते हुए कहते हैं – *"तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधकं च"* (निरुक्त १.१५)। अर्थात् चतुर्दश विद्यास्थानों [२] में परिगणित यह निरुक्त शास्त्र व्याकरण को पूर्ण करता है और अपने स्वतन्त्र अर्थ का साधक है ।

<u>१-अर्थज्ञान</u> वस्तुतः शब्दस्वरूप का निर्धारण व्याकरणशास्त्र का विषय तो है, परन्तु अर्थनिर्धारण में व्याकरणशास्त्र की अपनी सीमाएँ है । वह उन शब्दों के अर्थ निर्णय में प्रायः असहाय सा प्रतीत होता है जिन शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय का विधान सम्भव नहीं हो सकता है । शब्द सिद्धि की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं से पाणिनि भी परिचित थे इसीलिए उन्होंने ऐसे शब्दों की सिद्धि के लिए पृथक् उणादि सूत्रों की रचना की है परन्तु उनकी भी कुछ सीमाएँ हो सकती हैं, जबकि निरुक्तशास्त्र अर्थप्रधान शास्त्र है तथा यह अर्थनिर्णय में व्याकरण का पूरक तो है ही, साथ ही इसका स्वयं में भी स्वतन्त्र अस्तित्व है ।

<u>२- पदविभाग का ज्ञान</u> सामान्य रूप से तो पदविभाग व्याकरण का विषय समझा जाता है परन्तु महर्षि यास्क ने पदविभाग को मुख्यरूप से निरुक्त शास्त्र का विषय कहा है ।[३] वस्तुतः पद का निर्णय तो अर्थ के आधार पर होता है ।[४] अर्थज्ञान और पदविभाग ज्ञान में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होने से भी यह निरुक्त शास्त्र का ही विषय है क्योंकि जब अर्थज्ञान निरुक्त के बिना सम्भव नहीं है तो उसी अर्थ का आश्रय लेकर किया जाने वाला पदविभाग बिना निरुक्त के कैसे

१- अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थ प्रत्ययो न विद्यते । अर्थमप्रतियतो नात्यन्तं स्वर संस्कारोद्देशः। (निरुक्त १.१५)

२- पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः । वेदः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।। (याज्ञवल्क्य स्मृति) ।

३- अथापीदमन्तरेण पद विभागो न विद्यते । (निरुक्त १.१७) ।

४- अर्कः पदमैन्द्राणाम् । (बृहद्देवता २.९९।)

सम्भव हो सकता है ? जैसे –

मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्तम् ।

पीवस्तीर्जवधन्याः पिबन्त्व**वसाय पद्वते रुद्र मृळ** । (ऋ० १०.१६९.१) ।

योनिष्ठ इन्द्र निषदे अकारितमा निषीद स्वानो नार्वा ।

विमुच्या वयो**ऽवसायाश्वान्दो**षा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे । (ऋ० १.१०४.१)।

इन दोनों मन्त्रों में 'अवसाय' पद का प्रयोग है ।व्याकरण से मात्र इतना ज्ञात किया जा सकता है कि पाणिनि के 'सुप्तिङन्तं पदम्' के अनुसार यदि इसे तिङन्त माना जाए तो अव+√सो+कर्तरि लोँट् का रूप है, तथा यदि सुबन्त है तो अवस का चतुर्थी एकवचनान्त रूप है । उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में कहाँ पर यह नामपद है और कहाँ पर आख्यातपद; यह निश्चय करना निरुक्त शास्त्र का विषय है । क्योंकि मन्त्र का अर्थ निरुक्त के द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है । मन्त्र का संहिता पाठ से पदपाठ करते समय 'अवसाय' जिस मन्त्र में नामपद रूप में इष्ट है वहाँ पदपाठ में पदविभाग करते समय अवग्रह (ऽ) का प्रयोग नहीं किया जाता,[1] जबकि आख्यात पद के इष्ट होने पर पदपाठ में पदविभाग करते समय अव को साय से अवगृहीत किया जाता है ।[2]

इसी प्रकार **'दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम '** (ऋ० १०.१६५.१) तथा **'परो निर्ऋत्या आचक्ष्व'** (ऋ० १०.१६४.१) में व्याकरण की सीमा मात्र यहीं तक है कि संहितागत निर्ऋत्या पद चतुर्थी, पञ्चमी या षष्ठी विभक्ति में से किसी एक का एकवचनान्त रूप हो सकता है, किन्तु प्रथम मन्त्र में पञ्चमी या षष्ठी के एकवचन और दूसरे मन्त्र में चतुर्थी के एकवचन का अर्थग्रहण निरुक्त की सहायता से ही सम्भव है ।

अस्तु, पदविभाग ज्ञान निरुक्त के बिना भली-भाँति सम्भव नहीं है । अतः पदविभाग ज्ञान महर्षि यास्क के अनुसार इसकी दूसरी उपयोगिता है ।

३- देवता का ज्ञान यज्ञादि कार्यों में देवताओं के निमित्त आहुतियाँ प्रदान करने में वैदिक मन्त्रों

१- अवसाय । (निरुक्त १.१७) ।

२- अवऽसाय । (निरुक्त १.१७) ।

की मुख्य उपयोगिता है । परन्तु किस मन्त्र द्वारा किस देवता को आहुति दी जाए, इसका निर्णय करने में भी निरुक्त ज्ञान सहायक है ।[1] यथा –

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महिः नः श्रोष्यग्ने ।

इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ।। (ऋ०६.४.७) ।

इस मन्त्र में प्रथम अर्द्धर्च में अग्नि प्रतिपाद्य है और द्वितीय अर्द्धर्च में वायु का वर्णन है । 'शवस्' शब्द से इन्द्र का प्रतिनिधित्व भी यहाँ स्पष्ट होता है । अब तीन-तीन देवताओं की उपस्थिति में देवता का निर्णय कैसे हो यह विचारणीय प्रश्न है, और इस प्रकार की समस्त शङ्काओं का एकमात्र निवारण निरुक्त शास्त्र द्वारा ही सम्भव है । निरुक्त की सहायता से ही यहाँ यह जाना जा सकता है कि उपर्युक्त मन्त्र में प्रधान देवता अग्नि ही है, इन्द्र तथा वायु उपमेय के रूप में वर्णित होने से गौण हैं ।

अतः यज्ञकर्म में दी जाने वाली आहुति तत्सम्बन्धी ठीक देवता को ही मिले ऐसी इच्छा है तो देवताओं के निर्धारण व निर्णय का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए निरुक्त का अध्ययन अपरिहार्य है ।

इस प्रकरण में यद्यपि महर्षि यास्क की दृष्टि यज्ञ में देवताज्ञान पर ही है। तथापि बृहद्देवता से वर्तमान युग पर्यन्त देवता वर्णन में महर्षि यास्क के ही वर्गीकरण को आधार माना गया है । निरुक्त के बिना देवताओं के वास्तविक रूप एवं उनके ऐतिहासिक विकासक्रम को समझा नहीं जा सकता है ।

४- ज्ञान की प्रशंसा और अज्ञान की निन्दा इसके अतिरिक्त ज्ञान की प्रशंसा और अज्ञान की निन्दा[2] संसार का नियम है । इस नियम के अन्तर्गत अज्ञानतावश निन्दापात्र बनने से बचने के लिए भी निरुक्त अनिवार्यतः पढ़ना चाहिए ऐसा महर्षि यास्क का मत है । महर्षि यास्क इस कथन के प्रमाण स्वरूप एक ऋचा प्रस्तुत करते हैं –

१- अथापि याज्ञे दैवतेन बहवः प्रदेशा भवन्ति, तदेतेनोपेक्षितव्यम् ।(निरुक्त १.१७) ।

२- अथापि ज्ञान प्रशंसा भवति । अज्ञान निन्दा च । (निरुक्त १.१७) ।

स्थाणुरयं भारहारः.किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।

योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ।[१]

अर्थात् वेद को पढ़कर जो अर्थ नहीं जानता वह भार उठाने वाला खम्भा सदृश है । जो अर्थ को जानने वाला है वह ज्ञान रूपी जल से धुले हुए पापों वाला सम्पूर्ण कल्याण को प्राप्त होता है । स्वर्ग को प्राप्त होता है ।

वस्तुतः अर्थ को न जानते हुए भी मात्र शब्दों के उच्चारण मात्र से भी वेद के स्वाध्याय का फल मिल जाता है, ऐसी मान्यता वाले व्यक्तियों की संसार में कहीं भी न्यूनता नहीं है, परन्तु ऐसे लोगों को महर्षि यास्क के मत में उस ईंधन की सञ्ज्ञा से अभिहित किया गया है जो अग्नि रहित होकर जलाने की सामर्थ्य से हीन हैं ।अर्थात् जैसे बिना अग्नि के सूखा ईंधन स्वयं नहीं जल सकता, ठीक उसी प्रकार अर्थज्ञान से रहित पाठ कल्याणकारी नहीं हो सकता ।

अर्थज्ञान की प्रशंसा में महर्षि यास्क का कथन है कि अर्थ को जानने वाले व्यक्ति के समक्ष वाणी अपने रहस्यों को उसी प्रकार स्पष्ट कर देती है जैसे कोई पत्नी अपने पति के समक्ष स्वयं को अनावृत कर देती है । अर्थात् अर्थज्ञ व्यक्ति के लिए वाणी के समस्त रहस्य ज्ञात हो जाते हैं जिससे वह कल्याण को प्राप्त करता है । अतः अर्थज्ञान की प्राप्ति द्वारा लोक में प्रशंसा की प्राप्ति महर्षि यास्क द्वारा निर्दिष्ट निरुक्त की अन्य उपयोगिता है ।

इसके अतिरिक्त महर्षि यास्क ने सिद्धान्त आदि के रूप में अनेक ऐसे तत्वों को उद्घाटित किया है जो भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लिए आज भी उपयोगी हैं तथा भाषा शास्त्र के अध्ययन में उचित मार्गदर्शन कर रहे हैं।

<u>निरुक्त का उपकार</u> षड्वेदाङ्गों में उचित उच्चारण विधि, छन्दोविचय, विनियोग, कालविभाग और शब्द के स्वरूप आदि का ज्ञान निरुक्त से इतर पाँच अन्य वेदाङ्गों द्वारा भी हो जाता है परन्तु जब तक वैदिक मन्त्रों का अर्थ न ज्ञात हो जाए तब तक वेद बिना अग्नि के ईंधन के समान ही है ।

१- निरुक्त १.१८ ।

अतः वेदों के अर्थज्ञान के लिए निरुक्त की महती आवश्यकता है । यहाँ तक कि वेदाङ्गों के प्रधानभूत विषय यज्ञादि कर्मकाण्डों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का विनियोग भी मन्त्रार्थ ज्ञान के बिना नहीं जाना जा सकता है । निरुक्त शास्त्र की विशिष्टता को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य जैमिनि के द्वारा कहा गया है – *"अर्थाभिधानसंयोगन्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात् ।"*[१]

यद्यपि व्याकरण भी शब्दार्थ बोध में सहायक हो सकता है परन्तु इसकी सीमा शब्द की उत्पत्ति व उसकी साधुता असाधुता के निर्णय तक ही है । जबकि महर्षि यास्क ने स्वयं कहा है – 'व्याकरणस्य कार्त्स्न्यनम्' (निरुक्त १.१५) । अतः निरुक्त की व्यापकता असीमित है ।

शब्दों की अर्थपरक व्युत्पत्ति प्रस्तुत करना ही निर्वचन कहलाता है । यह विद्या भारतीय वाङ्मय में प्राचीन काल से आज तक अर्थ निर्णय में प्रयुक्त हो रही है । इसका प्रारम्भिक स्वरूप वेदों में भी प्राप्त होता है । यथा –

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" । (ऋ० १.१६४.५) ।

"वात आ वातु भेषजम्" । (ऋ० १०.१८६.१) ।

"केतपूः केतं नः पुनातु" । (मा०सं० ११.४)

"येन देवाः पवित्रेणात्मनं पुनते सदा ।" (सामवेदीय उपनिषद्१७५.२.८५) ।

'' तीर्थैस्तरन्ति'' । (अथर्व० १८.४.७) ।

सोम-सत्रादि जैसे विशाल यज्ञों के अवसर पर आयोजित (ब्रह्मोद्येषु) में निर्वचन के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त होने से इस विद्या का समुचित विकास हुआ, फलस्वरूप यज्ञविद्या के प्रतिपादक ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्वचन की बहुलता दिखाई देती है । ब्राह्मणवर्ती निर्वचनों की बहुलता के कारण आचार्य शबर द्वारा उद्धृत ब्राह्मण लक्षणों में (पूर्वमीमांसा २.१.३३ शाबर भाष्यम्) निर्वचन भी समाहित हैं ।

महर्षि यास्क ने भी यथावसर अपने निरुक्त ग्रन्थ में ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्वचन को उद्धृत किया है । उदाहरणस्वरूप ब्राह्मण ग्रन्थों में कहे गए कुछ निर्वचन यहाँ प्रस्तुत हैं –

१- पूर्वमीमांसा ९.१.३६ ।

“यदरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्” । (तैत्तिरीय संहिता १५.१.१, निरुक्त १०.५)।

“तद् यदजाभिर्वृत्रमशकद्धन्तुं तस्माच्छक्कर्यः ।”(कौ०ब्रा० २३.२, निरुक्त१.८)।

“तेनासुनासुरानसृजत् तदसुराणामसुरत्वम् ।” (तै०ब्रा०२.३.८.२, निरुक्त३.८).

“यदपश्यत् तस्मादेते पशवस्तेष्वेतमपश्यत् तस्माद्धैवैते पशवः।”(तै०ब्रा० ६.२.१.४, निरुक्त ३.१६)

इत्यादि ।